वर्णाश्रम धर्म का चौथा आश्रम, संन्यास सर्वथा कष्टसाध्य है। परन्तु जो वास्तव में अपना जीवन कृतार्थ करना चाहता है, वह सब प्रकार के कष्टों की उपेक्षा करते हुए संन्यासाश्रम अवश्य ग्रहण कर लेता है। स्त्री-पुत्रादि पारिवारिक सम्बन्धों का विच्छेद करना अनिवार्य होने से ही प्रायः कष्ट होता है। परन्तु जो व्यक्ति इन्हें सहने में समर्थ है, उसका भगवत्प्राप्ति-पथ निश्चित रूप से सम्पन्न हो जाता है। अर्जुन को भी क्षत्रियोचित स्वधर्मपालन में दृढ़ रहने का परामर्श दिया गया है, यद्यपि स्वजनों तथा अन्य प्रियजनों से युद्ध करना निस्सन्देह बड़ा कठिन है। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने चौबीस वर्ष की अल्पायु में संन्यास ग्रहण कर लिया, जबकि उनकी तरुण पत्नी तथा वयोवृद्धा जननी का कोई अन्य सम्बल न था; वे पूर्णतया उन्हीं पर आश्रित थीं। इस पर भी उन्होंने उच्च उद्देश्य से संन्यास ग्रहण किया और उदात्त कर्तव्यसम्पादन में तत्पर रहे। वास्तव में मायाबन्धन से मुक्ति का यही मार्ग है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।।१६।।

न=नहीं; **असतः**=असत् का; **विद्यते**=है; **भावः**=चिरस्थायित्व; **न**=नहीं; **अभावः**=अभाव; **विद्यते**=है; **सतः**=सत्-तत्त्व का; **उभयोः**=दोनों का; **अपि**=ही; **दृष्टः**=देखा गया है; **अन्तः**=तत्त्व; **तु**=और; **अनयोः**=इन; **तत्त्वदर्शिभिः**=तत्त्ववेत्ताओं द्वारा।

अनुवाद

असत् का तो चिरस्थायी अस्तित्व नहीं होता तथा सत् का कभी अन्त नहीं होता। इस प्रकार ज्ञानियों ने इन दोनों के तत्त्व का निर्णय किया है।।१६।।

तात्पर्य

देह परिवर्तनशील होने से चिरस्थायी नहीं है। आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान भी स्वीकार करता है कि विभिन्न कोशिकाओं की क्रिया-प्रतिक्रिया के कारण देह प्रतिक्षण परिवर्तित होती रहती है। इसी कारण यह वृद्धि और वृद्धावस्था को प्राप्त होती है। किन्तु देह तथा मन में परिवर्तन होने पर भी आत्मा नित्य अव्यय रहता है। यही जड़ प्रकृति और आत्मा का भेद है। स्वभावतः देह सदा परिवर्तनशील है और आत्मा सनातन। 'निर्विशेष' और 'सविशेष' आदि सब प्रकार के तत्त्वदर्शियों ने इस सिद्धान्त को माना है। 'विष्णुपुराण' में उल्लेख है कि श्रीविष्णु और उनके सब लोकों की स्वयंप्रकाश चिन्मय सत्ता है—**ज्योतींषि विष्णुर्भुवनानि विष्णुः।** **सत्** शब्द आत्मा का और **असत्** जड़ प्रकृति का वाचक है। सभी ज्ञानीजन इसमें एकमत हैं।

यहाँ से अज्ञान-मोहित जीवों के कल्याणार्थ श्रीभगवान् का मंगलमय सदुपदेश प्रारम्भ होता है। अज्ञान-अपहरण से आराधक एवं आराध्य में नित्य सम्बन्ध की पुर्नस्थापना हो जाती है, जिससे भिन्न-अंश जीव एवं परमेश्वर श्रीकृष्ण में जो भेद है, वह जाना जाता है। परतत्त्व का स्वरूप पूर्ण स्वाध्याय (आत्म-अध्ययन) करने से